THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182321
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—43—30-1-71—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 S59V Accession No. H1954

Author सिंह, गोपालशरण -

Title विश्वगीत - 1955 -

This book should be returned on or before the date last marked below.

विश्व-गीत

लेखक

ठाकुर गोपाल शरण सिंह

प्रकाशक

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस), लि०, प्रयाग

१९५५ मूल्य १।।।)

मुद्रक—पी० एल० यादव
इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग

दो शब्द

विगत महायुद्ध के दिनों में युद्ध-सम्बन्धी वृत्तान्तों को पढ़कर जो भाव मेरे मन में उत्पन्न होते रहे, उन्हें मैं गीतों का रूप देता जाता था। इस प्रकार धीरे-धीरे उनका एक संग्रह तैयार हो गया था और वह छपने के लिए भेज दिया गया था। परन्तु कुछ अनिवार्य कारणों से वह पुस्तक अभी तक प्रकाशित न हो सकी। फल यह हुआ कि युद्धोपरान्त लिखे गये भी कुछ गीत इस संग्रह में आ गये। अस्तु, प्रकाशन में तो विलम्ब हुआ, किन्तु पुस्तक का कलेवर बढ़ गया है।

भौतिकवाद जिस चरम सीमा को पहुँच गया है, उसी का परिणाम राष्ट्रों का संघर्ष है। उसी से आक्रमण-प्रवृत्ति को प्रेरणा मिलती है। दानवीय मनोवृत्तियाँ सदैव अनर्थ का कारण होती हैं। परन्तु जब वे किसी राष्ट्र के जीवन पर आधिपत्य पा जाती हैं तब उनका परिणाम बहुत ही भयङ्कर होता है। तभी फैसिज्म और नाजिज्म जैसी घृणित विचार-धाराओं का जन्म होता है। उद्दण्डता, मदान्धता और निर्दयता की कोई सीमा नहीं रह जाती। सभ्यता और शिक्षा मानवता के जिस भव्य भवन का शताब्दियों में निर्माण करती है उसका नाश बात की बात में हो जाता है। जिन वैज्ञानिक आविष्कारों से मनुष्य-समाज का अपार हित हो सकता है, उन्हीं के द्वारा अतुल संहार का कार्य किया जाता है। पुण्य और पाप का भेद ही मिटा दिया जाता है। विगत महायुद्ध ने इन बातों को अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया है।

इस पुस्तक में युद्ध की घटनाओं का वर्णन नहीं है। थोड़े से गीतों में ऐसे विश्वव्यापी महायुद्ध का वर्णन कैसे हो सकता था। इनमें उस युद्ध की केवल रूप-रेखाओं का चित्रण करने की चेष्टा की गई है। तथापि मुझे विश्वास है कि इन्हें पढ़ने से पशुशक्ति के विकराल नग्न नर्त्तन और उससे होनेवाले भयङ्कर दुष्परिणामों का कुछ आभास पाठकों को मिल सकेगा। मुझे यह भी आशा है कि युद्ध तथा शान्ति के महत्त्व-पूर्ण प्रश्न पर भी ये गीत कुछ प्रकाश डाल सकेंगे।

५, महात्मा गांधी मार्ग
प्रयाग
५-४-५६

गोपालशरणसिंह

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१—अतुल गौरववान योरप	...	१
२—क्या से क्या होनेवाला है	...	५
३—दानवता कहती स-गर्व है	...	६
४—मौन देखता है आकाश	...	८
५—है कैसा संघर्ष	...	९
६—है कराल यह काल	...	१०
७—पशुबल कितना हुआ प्रबल है	...	१३
८—है कैसी बरसात	...	१४
९—हैं जीवन-प्रसून मुरझाये	...	१५
१०—क्या मूल्य रहा है जीवन का	...	१६
११—क्या है अब जीवन भार नहीं	...	१७
१२—ये तारे भी कुछ कहते हैं	...	१८
१३—देखो मूढ़ विश्व की माया	...	१९
१४—है विचित्र यह बात	...	२१
१५—क्या वह दिन भी आ जायेगा	...	२२
१६—जो रही कल प्रेम से फूली फली	...	२३
१७—होता है कैसा बलिदान	...	२४
१८—कैसा झंझावात प्रबल है	...	२५
१९—कुम्हलाये हैं फूल	...	२६
२०—है न मनुजता शेष	...	२७

विषय		पृष्ठ
२१—देखो यह जग का परिवर्तन	...	२८
२२—मृदु खग-पोतों का संहार	...	३०
२३—कितना हुआ तेरा पतन	...	३२
२४—तू हुआ विजित यूनान अमर	...	३३
२५—विश्व-वाटिका का मृदु फूल	...	३४
२६—जीते हैं अब भी देश विजित	...	३६
२७—दुःख-सागर में निमज्जित	...	३७
२८—क्या बोलें ये सुमन दलित हैं	...	३६
२६—कैसे जीवन पार करे	...	४०
३०—कैसा निठुर व्यवहार	...	४१
३१—कैसे रहे विश्वास	...	४२
३२—अरे जर्मनी विश्व त्रस्त है	...	४३
३३—है कैसा उन्माद	...	४५
३४—है कैसी यह भूल	...	४६
३५—क्या न बुझेगी तेरी प्यास	...	४७
३६—मत कर तू अभिमान	...	४८
३७—कब तक जग को और छलेगा	...	४६
३८—मत व्यर्थ निज गुण-गान कर	...	५१
३६—कर ले दृढ़ निज वक्ष	...	५२
४०—रोम, निज प्राचीन गौरव	...	५३
४१—क्यों अपने को तू छलता है	...	५५
४२—रे जग-शत्रु महान	...	५७
४३—कब तक देखें जग-लोचन	...	५८
४४—शौर्य-धैर्य-निधान है तू	...	५६
४५—बरस रहे हैं बम विकराल	...	६१
४६—हम हैं शूरों की सन्तान	...	६३

विषय		पृष्ठ
४७—हमें मृत्यु से भीति नहीं	...	६४
४८—हम न भीरु कहलायेंगे	...	६५
४९—गायें हम वीरों के गान	...	६६
५०—क्या होगा परिणाम	...	६७
५१—वीर भारत-पुत्र हो तुम	...	६८
५२—जग का दुख हमको हरना है	...	७०
५३—गायें सब मिलकर यह गीत	...	७१
५४—मृत्यु से क्यों हम डरें	...	७२
५५—हम चाहते हैं बस यही	...	७४
५६—हुआ अचानक वज्र-प्रहार	...	७५
५७—देखो, देखो वह समरस्थल	...	७७
५८—परम शक्तिशाली जापान	...	७९
५९—हे चीन पुराय प्राचीन देश	...	८२
६०—देखो दशा मृदुल फूलों की	...	८४
६१—संयुक्त राज्य उन्नत उदार	...	८५
६२—हरा भरा फिर से कब होगा	...	८७
६३—फिर से खिलेंगे वे सुमन	...	८८
६४—क्या है हुआ परिणाम	...	८९
६५—कौन विजेता कौन विजित है	...	९१
६६—मिटा न जग का त्रास	...	९३
६७—शान्ति क्या द्वेषाग्नि में जलती रहेगी	...	९४
६८—सहृदय मानव भी निर्दय है	...	९६
६९—संघर्ष क्यों होता रहे	...	९८
७०—कर रहा है मूढ़ नर	...	९९
७१—क्यों मनुज करता नहीं तू	...	१००
७२—विश्व विश्रुत एक ही परिवार है	...	१०१

विषय		पृष्ठ
७३—मानव मानव से प्यार करे	...	१०२
७४—बने मनुज निज उर का ईश्वर	...	१०४
७५—बने न मनुज नाश का कारण	...	१०५
७६—करे मनुज निज मन का शासन	...	१०६
७७—शान्ति चाहता है जग-जीवन	...	१०७
७८—विश्व चाहता है निर्मलता	...	१०८
७९—सुख-शान्तिमय संसार हो	...	१०९

१

अतुल गौरववान योरप
बल-विभूति-निधान !
बन गया तू मेदिनी में
स्वर्ग का उपमान।

है विपुल भू-भाग पर
तेरा सुदृढ़ अधिकार,
लोटती तेरे पदों पर
है समृद्धि अपार,

ज्ञान का भण्डार है
विज्ञान का आगार,
देखता है नित्य तेरा
मुख सकल संसार,

विश्व का आदर्श है
तेरा अतुल उत्थान !

है दिखाया बुद्धि का
तू ने अपूर्व विकास,
कर रहा है तू समुन्नति
के शिखर पर वास,

हैं अनल अम्बर मही
जल वायु तेरे दास,
पर न होती शान्त है
तेरी विभव की प्यास,

बन गया गर्वान्ध तू
हो शक्तिवान महान !

है कहाँ से आ गया
यह निन्द्य नाजीवाद ?
कर रहा है नाश जग का
यह महा उन्माद,

है दिलाता विश्व को
बर्बर युगों की याद,
यह घृणित फैसिज्म है
मनुजत्व का प्रतिवाद,

राज सत्ता के लिए
व्यक्तित्व का बलिदान !

हैं खिले जिसमें सुमन
बहुरंग के छविमान,
है जहाँ होता सदा
श्रुति मधुर कोकिल गान,

जो सुखद मधुमास का है
मञ्जु लीलास्थान,
जो हरण करता सदा
नन्दन-विपिन का मान,

हो रहा है नष्ट तेरा
वह रुचिर उद्यान।

हैं किये तूने अलौकिक
विविध आविष्कार,
पर उन्हीं से हो रहा है
अतुल जन - संहार,

है बढ़ाया विश्व में
तू ने विपुल व्यापार,
किन्तु उसके ही लिए
है लड़ रहा संसार,

वैर-भाव अशान्ति का
तू है समुद्गम स्थान।

हो रहे हैं पददलित
जो देश हैं बलहीन,
सह रहे हैं घोर अत्याचार
दुर्विध दीन,

है मिली जो सभ्यता
तुझको अपूर्व नवीन,
हो रहा है विश्व उससे
आज यन्त्राधीन,

हो गया निष्प्राण है
मानव मशीन समान।

कर चुका अधिकार तुझ पर
पूर्ण भौतिकवाद,
कब तुझे देता सुनाई
दिव्य अन्तर्नाद ?

शक्तिमत्ता से तुझे
ऐसा हुआ उन्माद,
है न आत्मा का सुलभ
तुझको विमल आह्लाद,

पाश तुझको मुक्ति है
अभिशाप है वरदान।

२

क्या से क्या होनेवाला है ?

जो आकाश अभी हँसता है
क्या वह भी रोनेवाला है ?

जिसकी भेंट लिये कुसुमाकर
रहता है सब काल उपस्थित,
किसलय-कुसुमों की विभूति वह
क्या नन्दन खोनेवाला है ?

सुख-समृद्धि के उच्च शिखर पर,
करता है जो वास निरन्तर,
नयन-नीर से क्या वह अपना
मुख-पङ्कज धोनेवाला है ?

रहती है नित जहाँ प्रवाहित
शान्ति-सुधा-सरिता की धारा,
क्या विष-बीज उसी प्राङ्गण में
दुष्ट दैव बोनेवाला है ?

सन्तत जागरूक रहकर की
जिसने अनुपम भौतिक उन्नति,
मोह-वारुणी पीकर क्या वह
मदोन्मत्त सोनेवाला है ?

३

दानवता कहती स-गर्व है—
"मैं हूँ शक्ति महान,
जीतूँगी मैं सकल विश्व को
है मुझको वरदान,"
श्रवण कर उसका निन्द्य विचार;
बहुत व्याकुल है यह संसार।

मानवता कहती सविनय है—
"मुझे न तुझसे द्वेष,
यही चाहती हूँ मैं केवल
दे न किसी को क्लेश,
तनिक तू भी बनकर समुदार;
न कर अबलों पर अत्याचार।"

दानवता बोली—"है मुझको
नहीं किसी से प्रीति,
बदल जाय दुनिया, बदलेगी
कभी न मेरी नीति,
न होगा हल्का दुख का भार,
न मानेगी तू जब तक हार।"

मानवता बोली—"है तुझ पर
मुझे नहीं विश्वास,
होगी नहीं सफलता तुझको,
होगा व्यर्थ प्रयास,
अन्त में तेरे पापाचार
करेंगे तेरा ही संहार।"

४

मौन देखता है आकाश !
विश्व-सभ्यता के शोणित से
भूमण्डल है लाल हुआ,
आदर्शों की ले आहुतियाँ
समरानल विकराल हुआ,
निष्ठुर सत्ता का परिहास;
मौन देखता है आकाश।

मानव-शत्रु मदान्ध भयङ्कर
पशुबल है दुर्जेय हुआ,
श्रेय जगत का हेय हुआ है
अन्ध स्वार्थ है ध्येय हुआ,
उर में भर भरकर निश्वास;
मौन देखता है आकाश।

मानवता में जो सदंश है
वह नितांत निष्प्राण हुआ,
परिवर्तित होकर अति कोमल
मानव-उर पाषाण हुआ,
होकर अतिशय मलिन उदास;
मौन देखता है आकाश।

५

है कैसा संघर्ष !

है अगणित सेनाओं का दल,
वायुयान उड़ते हैं प्रतिपल,
गरज रहा है गर्वित पशुबल,
पर इन सब से आज अकेला
लड़ता है आदर्श;
है कैसा संघर्ष !

देशभक्त वीरों के ही शव,
दिखते हैं सब ओर पड़े अब,
मृत्यु नृत्य करती है ताण्डव,
कुचल रहा है न्याय दया को
पशुता का उत्कर्ष;
है कैसा संघर्ष !

निर्भय नहीं किसी का है मन,
है न स्वतन्त्र किसी का जीवन,
होता है आत्मा का क्रन्दन,
दयाहीन सत्ता को जग का
है विषाद ही हर्ष;
है कैसा संघर्ष !

६

है कराल यह काल !
अम्बर में हैं मेघ गरजते,
भूतल में हैं सिन्धु तरजते,
समर-भूमि में मार-काट की
देख दशा विकराल;
है कराल यह काल !

यह कैसी द्वेषाग्नि जगी है,
नन्दन वन में आग लगी है,
भूमि आज धारण करती है,
भीषण ज्वाला-माल;
है कराल यह काल ।

यद्यपि भूमि मौन ही रहती;
पाप-भार कब से है सहती ?
तो भी हो ही गया अचानक
टर्की में भूचाल;
है कराल यह काल !

सुन सुन कर तोपों का गर्जन,
क्रोधित सेना दल का तर्जन,
मानसरोवर छोड़ छोड़ कर
हैं भग रहे मराल;
है कराल यह काल।

क्षण भर भी विश्राम नहीं है,
कहीं शान्ति का नाम नहीं है,
जीवनधारी मनुजों से तो
हैं अच्छे कङ्काल;
है कराल यह काल!

कठिन नहीं है जग में मरना,
कठिन प्राण है धारण करना,
मृत्यु नृत्य करती है सिर पर
जीवन है जञ्जाल;
है कराल यह काल!

जीवन में तो दुख ही दुख है,
पर मरने में ही क्या सुख है?
मरना तभी सफल है यदि हो
भग्न-विश्व-दुख-जाल;
है कराल यह काल!

हैं बढ़ रहे नाश के साधन,
अस्त्र-शस्त्र जल-थल-नभ-वाहन,
फल-फूलों के अधिक भार से
टूट रही है डाल;
है कराल यह काल !

वीर कभी क्या घबराते हैं,
जय के गीत सदा गाते हैं,
किन्तु मृत्यु आकर कहती है—
"मैं दे दूँगी ताल;"
है कराल यह काल !

—

७

पशुबल कितना हुआ प्रबल है ?
मूल्य नहीं है अपनेपन का,
तन का मन का या जीवन का,
विकल हो रही है मानवता
अमृत बन गया विषम गरल है,
पशुबल कितना हुआ प्रबल है ?

मृदु प्रसून हो रहे दलित हैं,
दीन विहंग काल कवलित हैं,
दानवता हँसती है मन में
जग-लोचन हो गया सजल है;
पशुबल कितना हुआ प्रबल है ?

अविरत बहता तीव्र पवन है,
मुरझाया जग का कानन है,
विश्व-सरोवर के शतदल पर
उपल-वृष्टि होती पल पल है,
पशुबल कितना हुआ प्रबल है ?

८

है कैसी बरसात ?

नभ है मेघों से आच्छादित,
वसुधा है दृग-जल से प्लावित,
होता है पल पल अवनी में
भीषण वज्र-निपात,
है कैसी बरसात ?

नष्ट हो रही है हरियाली,
नव पुष्पित पल्लवित द्रुमाली,
उपल-पात से दलित हो रहे
हैं जीवन-जलजात;
है कैसी बरसात ?

देता कुछ भी नहीं दिखाई,
कैसी घोर घटा है छाई,
कहाँ प्रकाश छिपा है जा कर
है न किसी को ज्ञात;
है कैसी बरसात ?

९

हैं जीवन-प्रसून मुरझाये !

सुख-समृद्धि के शुभ दिन बीते,
रस के कोष हो गये रीते,
कहाँ कहाँ से खिंच कर जग में
इनके पास दुःख हैं आये !
हैं जीवन-प्रसून मुरझाये !

एक दुःख हो तो सह लेवे,
यदि स्वतन्त्र हों तो कह देवे,
शिशिर निदाघ घोर वर्षा से
रहते हैं सदैव घबराये;
हैं जीवन-प्रसून मुरझाये !

प्रति दिन ही बादल घिरते हैं,
नित्य यहाँ ओले गिरते हैं,
लता वेलि द्रुम सूख रहे हैं
कौन भला अब इन्हें बचाये ?
हैं जीवन-प्रसून मुरझाये !

१०

क्या मूल्य रहा है जीवन का ?

पशुवत् निज आयु बितानी है,
यह कैसी करुण कहानी है ?
अचरज है, हो सकता जग में
कुछ काम नहीं अपने मन का;
क्या मूल्य रहा है जीवन का ?

सब प्राणी खाते पीते हैं,
सुख से या दुख से जीते हैं,
उपयोग न समुचित हो पाता
जग के तन मन एवं धन का,
क्या मूल्य रहा है जीवन का ?

पञ्जर में शुक वह गाता है,
जो उसे विश्व सिखलाता है,
कुछ ज्ञान नहीं होने पाता
जगतीतल में अपनेपन का;
क्या मूल्य रहा है जीवन का ?

११

क्या है अब जीवन भार नहीं ?

कुछ है मन को आधार नहीं,
अपने पर भी अधिकार नहीं,
रोगी निज दुखमय रोगों का
कर सकता है उपचार नहीं,
क्या है अब जीवन भार नहीं ?

है कपट-हीन व्यवहार नहीं,
मन में है स्वच्छ विचार नहीं,
आँसू की दो बूँदें दे दे
इतना भी जग में प्यार नहीं;
क्या है अब जीवन भार नहीं ?

यदि हो सकता उपकार नहीं,
तो करे मनुज अपकार नहीं,
ले छीन किसी का सुख न कभी
इतना भी विश्व उदार नहीं;
क्या है अब जीवन भार नहीं ?

१२

ये तारे भी कुछ कहते हैं !

हम चाहे इन्हें न जान सकें,
चाहे न इन्हें पहचान सकें,
पर ये जग के उत्पात सभी
सब काल देखते रहते हैं;
ये तारे भी कुछ कहते हैं !

भू पर ये चरण न धरते हैं,
नभ से ही इङ्गित करते हैं,
ये हैं दुख से अनभिज्ञ नहीं
चुपचाप व्यथायें सहते हैं;
ये तारे भी कुछ कहते हैं !

ये कहीं न आते जाते हैं,
पर सहानुभूति दिखाते हैं,
रजनी में करुणा-स्रोत नित्य
इनके नयनों से बहते हैं;
ये तारे भी कुछ कहते हैं !

१३

देखो मूढ़ विश्व की माया !

यहाँ छिपे हैं शूल सुमन में,
चुभ चुभ जाते हैं जो तन में,
यहाँ नित्य धोखा देती है
पग पग पर अपनी ही छाया;
देखो मूढ़ विश्व की माया !

यहाँ व्यथित रहता है मानव,
जिसे देख हँसता है दानव,
यहाँ एक क्षण में होता है
नष्ट युगों का विभव कमाया;
देखो मूढ़ विश्व की माया !

सज्जनता है यहाँ वचन में,
पर है छिपी कुटिलता मन में,
यहाँ कपट का भाव हृदय में
रहता है सब काल समाया;
देखो मूढ़ विश्व की माया !

यहाँ ज्ञान विज्ञान चिरन्तन,
हैं बन गये नाश के साधन,
यहाँ प्रेम के भव्य भवन में
भेद-भाव का दल घुस आया;
देखो मूढ़ विश्व की माया !

यहाँ बोलवाला है छल का,
द्रोह मोह मत्सर पशुबल का,
यहाँ स्वार्थ ने मानवता का
दानवता से मेल कराया;
देखो मूढ़ विश्व की माया !

यहाँ नहीं है जीवन अपना,
केवल दो दिन का है सपना,
यहाँ छोड़ देती है नर का
सङ्ग अन्त में उसकी काया;
देखो मूढ़ विश्व की माया !

१४

है विचित्र यह बात !

क्रान्ति देखते युग बीते हैं,
तो भी अभी हाथ रीते हैं,
मोह-वारुणी मन पीते हैं,
रवि की किरणें फूट रही हैं
किन्तु न चुकती रात;
है विचित्र यह बात !

घेरे ही रहती है माया,
रहता अन्धकार है छाया,
रहती सदा शिथिल है काया,
मन है खिन्न, दूर ही से है
हँसता नित्य प्रभात;
है विचित्र यह बात !

जीवन में विश्वास अटल है,
जग को आदर्शों का बल है,
पर पशुबल हो गया प्रबल है,
कभी नहीं विकसित हो पाते
जग - जीवन - जलजात;
है विचित्र यह बात !

१५

क्या वह दिन भी आ जायेगा ?

ईश्वर से विश्वास हटेगा,
न्याय सत्य का नाम मिटेगा,
खो कर निज मानवता सारी
मानव दानव कहलायेगा,
क्या वह दिन भी आ जायेगा ?

नहीं धर्म का ध्यान रहेगा,
किन्तु वृथा अभिमान रहेगा,
करके घोर पाप भी जग में
मनुज न मन में शरमायेगा;
क्या वह दिन भी आ जायेगा !

ज्ञान नाश का मूल बनेगा,
फूल हृदय का शूल बनेगा,
दुःख-दलित पीड़ित मानव पर
दया न कोई दिखलायेगा;
क्या वह दिन भी आ जायेगा ?

शेष रहेंगी केवल स्मृतियाँ,
होंगी लुप्त सभी संस्कृतियाँ,
कहीं नहीं सुख-शान्ति रहेगी
घोर क्लेश ही नर पायेगा,
क्या वह दिन भी आ जायेगा ?

१६

जो रही कल प्रेम से फूली फली,
क्लान्त है वह आज विश्व-वनस्थली।
खिल चुकी जितना उसे खिलना रहा,
अब लगी है नित्य मुरझाने कली।

क्या दशा उस सभ्यता की आज है,
मानवों के प्रेम से थी जो पली।
चल चुकी जितना उसे चलना रहा,
अब घड़ी की है सुई पीछे चली।

क्या रहेगी मान्य वह संस्कृति कभी,
सत्य-साँचे में नहीं जो है ढली।
जो छिपा है भेद वह खुल जायगा,
छल सकेगा विश्व को कब तक छली।

है अतुल उन्नति हुई विज्ञान की,
पर न उससे आपदा जग की टली।
शान्ति की सुन्दर लता सुखदायिनी,
है घृणा-द्वेषाग्नि में जाती जली।

है उसी का बोलबाला विश्व में,
है महत्तम शक्तिशाली जो बली।
किन्तु क्या वह शक्ति की लतिका खिली,
एक दिन होगी स्वयं न दली मली?

१७

होता है कैसा बलिदान ?

बढ़ता जाता है संघर्ष,
शिथिल हो रहा है आदर्श,
लुटता है जीवन का हर्ष,
सिद्धान्तों की शक्ति क्षीण है
न्याय-सत्य का रहा न ध्यान;
होता है कैसा बलिदान ?

युग युग के स्मारक अभिराम,
जग-उन्नति के चिह्न ललाम,
अतुल परिश्रम के परिणाम,
जग के इस अमूल्य वैभव का
हुआ जा रहा है अवसान;
होता है कैसा बलिदान ?

नभ में वायुयान गतिमान,
सागर में गिरि से जलयान,
नाच रहे हैं काल-समान,
है हो रहा नाश का कारण
जग का ज्ञान और विज्ञान;
होता है कैसा बलिदान ?

१८

कैसा झंझावात प्रबल है !

काँप रहे पादप थर-थर हैं,
फल प्रसून गिरते झर-झर हैं,
पल्लव दल करता हर-हर है,
उछल रहा सागर का जल है,
कैसा झंझावात प्रबल है ?

टूट रही हैं मृदु शाखायें,
छिन्न भिन्न हो रही लतायें,
भय है तरु भी उखड़ न जायें,
होता भारी उथल पुथल है;
कैसा झंझावात प्रबल है ?

क्या यह बस बढ़ता जायेगा,
शीघ्र प्रलय को ही लायेगा,
क्या न अन्त इसका आयेगा ?
भय से कम्पित अवनी तल है;
कैसा झंझावात प्रबल है ?

१९

कुम्हलाये हैं फूल !

अभी अभी तो खिल आये थे,
कुछ ही विकसित हो पाये थे,
वायु कहाँ से आकर इन पर
डाल गई है धूल !
कुम्हलाये हैं फूल !

जीवन की सुख-घड़ी न आई,
भेंट न भ्रमरों से हो पाई,
निठुर नियति कोमल शरीर में
हूल गई है शूल;
कुम्हलाये हैं फूल !

नहीं विश्व की पीड़ा जानी,
निज छवि देख हुए अभिमानी,
हँसमुख ही रह गये सदा ये
यही एक थी भूल;
कुम्हलाये हैं फूल !

२०

है न मनुजता शेष।

बर्बरता पा रही विजय है,
काँप रही सभ्यता सभय है,
क्या सचमुच आ रहा प्रलय है,
चिन्तित हैं सब देश;
है न मनुजता शेष।

निष्ठुर निर्दयता का नर्तन,
पापमयी पशुता का तर्जन,
मानवता का सकरुण क्रन्दन,
हैं बढ़ रहे विशेष,
है न मनुजता शेष।

केन्द्रित है जग अपनेपन में,
न्याय दया है शेष वचन में,
दानवता मानव के मन में;
है कर रही प्रवेश;
है न मनुजता शेष।

२१

देखो यह जग का परिवर्तन !

जिन कलियों को खिलते देखा,
मृदु मारुत से हिलते देखा,
प्रिय मधुपों से मिलते देखा,
हो गया उन्हीं का आज दलन !
देखो यह जग का परिवर्तन !

जो थे कल किसलय-कुसुम-कलित,
कोकिल-कलकंठ-सुधा-सिंचित,
लहलही लता-स्पर्शित हर्षित,
करते हैं वे द्रुम भूमि-शयन;
देखो यह जग का परिवर्तन !

रहती थी नित्य बहार जहाँ,
बहती थी रस की धार जहाँ,
था सुषमा का संसार जहाँ,
है वहाँ आज बस ऊजड़ वन;
देखो यह जग का परिवर्तन !

जो गुंजित थे कोमल स्वर से,
प्लावित थे रस के सागर से,
आलोकित प्रेम-प्रभाकर से,
हैं नग्न भग्न वे भव्य भवन;
देखो यह जग का परिवर्तन !

शशि जहाँ खेलता था कर में,
चपला हँसती थी घर-घर में,
कुछ भेद न था निशि वासर में,
अब अन्धकार है वहाँ सघन;
देखा यह जग का परिवर्तन !

था जहाँ शान्ति-सागर मन में,
सुख की सरिता थी जीवन में,
गायन था उर के स्पन्दन में,
है वहाँ भयङ्कर सूनापन;
देखो यह जग का परिवर्तन !

था अतुल विभव का वास जहाँ,
था जीवन में मधुमास जहाँ,
था सन्तत हास-विलास जहाँ,
है आज वहाँ दुख का क्रन्दन;
देखो यह जग का परिवर्तन !

जो देश समुन्नत भाल रहे,
जग - मानस - मञ्जु - मराल रहे,
जिनके मृदु हृदय विशाल रहे,
है उनका भी हो गया पतन;
देखो यह जग का परिवर्तन !

२२

मृदु खग-पोतों का संहार !

पोल और जेच लोगों ने था
क्या अनुचित व्यवहार किया ?
यही एक थी भूल कि अपनी
निर्बलता से प्यार किया,
हुआ इसी से निठुर प्रहार,
मृदु खग-पोतों का संहार !

निर्बल निरपराध नार्वे भी
पशुबल से आक्रान्त हुआ,
ज्यों ज्यों जीत हुई पशुता की
त्यों त्यों मन उद्भ्रान्त हुआ,
क्या न रुकेगा किसी प्रकार ?
मृदु खग-पोतों का संहार !

है यूनान विकल, हो कर निज
प्रिय स्वतन्त्रता से वञ्चित,
है लुट गया अचानक उसका
गौरव-वैभव चिर-संचित
है कैसा यह अत्याचार ?
मृदु खग-पोतों का संहार !

था हालैण्ड तटस्थ पड़ोसी
फिर क्यों अत्याचार हुआ ?
क्यों निर्दोष बेल्जियम पर भी
निष्ठुर वज्र प्रहार हुआ ?
कब तक देखेगा संसार ?
मृदु खग-पोतों का संहार।

२३

कितना हुआ तेरा पतन ?

कितना बड़ा तू वीर था ?
कितना बड़ा रण-धीर था ?
कितना सुदृढ़ गम्भीर था ?
पर अब पराजित फ्रान्स तू
है मान-मर्दित नत-नयन
कितना हुआ तेरा पतन ?

तू सुख-समृद्धि-निधान था,
बलवान था सज्ञान था,
संसार का अभिमान था,
पर आज तू है बन गया
दुख-दीनता-भय का भवन
कितना हुआ तेरा पतन ?

स्वातन्त्र्य तेरा छत्र था,
तू प्रेम का शतपत्र था,
गौरव-गगन-नक्षत्र था,
पर देश-द्रोह-कृशानु से
है जल गया तेरा सदन;
कितना हुआ तेरा पतन ?

२४

तू हुआ विजित यूनान अमर !

कितना तूने बलिदान किया ?
कितना शोणित से स्नान किया ?
कितना तूने विष-पान किया ?
हो गई हार भी जीत तुझे
तूने पाया जग का आदर;
तू हुआ विजित यूनान अमर !

तू रहा वीर पर था निर्बल,
था आदर्शों का बल केवल,
अपने पर था विश्वास अटल,
दिखला कर साहस शौर्य अतुल
तू हुआ प्रशंसा-पात्र प्रवर;
तू हुआ विजित यूनान अमर !

करके निर्दय आघात थकी,
पशु-शक्ति न तुझको डरा सकी,
तुझमें दृढ़ता थी मानस की,
जिसने मृगेश-मद चूर किया
तू है वह मृग-शावक सुन्दर;
तू हुआ विजित यूनान अमर ।

२५

विश्व-वाटिका का मृदु फूल !

बीर युगोस्लैविया न तूने
पशुता का सम्मान किया।
स्वाभिमान की रक्षा के हित
तूने निज बलिदान किया,
कौन कहेगा इसको भूल ?
विश्व-वाटिका का मृदु फूल !

निन्द्य नीचता का अनुशासन
तुझे नहीं स्वीकार हुआ,
इसीलिए निर्दय सत्ता का
तू इस भाँति शिकार हुआ,
चुभे हृदय में शत शत शूल;
विश्व-वाटिका का मृदु फूल !

हार गया पर जग-मानस का
तू मृदु मञ्जु मराल हुआ,
होकर पीड़ित पद-मर्दित भी
तू गर्वोन्नत भाल हुआ,
हुआ विश्व तेरे अनुकूल;
विश्व-वाटिका का मृदु फूल !

वायुयान, टैंकों से तुझको
अरि दल ने है नष्ट किया,
तेरी विजित अवस्था में भी
तुझको भीषण कष्ट दिया ?
पिसकर आज हुआ तू धूल;
विश्व-वाटिका का मृदु फूल !

अन्धकार यह नहीं रहेगा
होगा दिव्य प्रकाश नया।
यह पतझड़ बस दो दिन की है
आयेगा मधुमास नया।
फिर विकास होगा सुख-मूल;
विश्व-वाटिका का मृदु फूल !

जीते हैं अब भी देश विजित !

दुख-दाह उन्होंने पाया था,
पर रण में शौर्य दिखाया था,
अरिदल को रुधिर पिलाया था,
रोषाग्नि न उनकी हुई शमित;
जीते हैं अब भी देश विजित !

पत्थर से लड़कर फूल गिरे,
पर शूल हृदय में हूल गिरे,
अपने को कभी न भूल गिरे,
हैं शीश न उनके हुए नमित;
जीते हैं अब भी देश विजित !

वे हैं पद-मर्दित सन्तापित,
अत्याचारों से अभिशापित,
दुख-दैन्य-दैत्य से अपराजित,
पीकर भी पीड़ा-गरल अमित;
जीते हैं अब भी देश विजित !

वे व्यथित अश्रु के सागर हैं,
पीड़ा के स्वर अति कातर हैं,
वे मुरझाये पद्माकर हैं,
पर उनकी आत्मा है न पतित;
जीते हैं अब भी देश विजित !

२७

दुःख-सागर में निमज्जित
हैं पराजित देश।

पक्ष-विरहित पक्षियों से हैं विकल गतिहीन,
विष-विहीन भुजङ्गमों से हैं भयातुर दीन,
पद-दलित पीड़ित प्रताड़ित हैं क्षुधार्त्त मलीन,
हो गये निष्प्राण से हैं घोर-चिन्ता-लीन,
सिर झुकाकर मानते हैं
शत्रु के आदेश!

लुट रहा धन धान्य है तो भी न सकते बोल,
देखते हैं शून्य नभ को नित्य आँखें खोल,
व्यर्थ है जीवन न कुछ उसका रहा है मोल,
वेदना उर में सदा विष रस रही है घोल।
कौन गिन सकता कि कितने
सह रहे हैं क्लेश?

नारियों पर हो रहा है घोर अत्याचार,
छिन रहा लघु बालकों का प्राण दुग्धाहार,
सद्य नाजी सैनिकों का है न दुर्व्यवहार,
गोलियों का बन रहे हैं लोग नित्य शिकार।
नोचते हैं वे स्वयं ही
क्रोधवश निज केश।

कर रहे हैं शत्रु के हित रातदिन वे काम,
किन्तु तो भी है नहीं मिलता उन्हें विश्राम,
है न कुछ आधार उनको लुट गया धन धाम,
घूमते हैं जङ्गलों में छोड़कर गृह-ग्राम।
आज उनमें और पशु में
है न भेद विशेष!

जो रहे स्वाधीन कल तक आज हैं वे दास,
जो सदैव प्रसन्न थे वे हैं अतीव उदास,
जो धनी थे वे हुए दुख-दैन्य के आवास,
जो सदा निर्भय रहे वे सह रहे हैं त्रास।
पूर्वगौरव की रही स्मृति
मात्र है अवशेष!

२८

क्या बोलें ये सुमन दलित हैं ?

लता - अङ्क को भरने वाले,
जग को सुरभित करने वाले,
प्रिय कण्ठों में रहने वाले
देखो अवनी पर लुंठित हैं;
क्या बोलें ये सुमन दलित हैं ?

जन्मकाल से हँसने वाले,
तरु - शाखा पर बसने वाले,
उच्चासन के अधिकारी भी
किस अभाग्य से भूमि; पतित हैं ?
क्या बोलें ये सुमन दलित हैं ?

हुआ सभी कुछ तहस नहस है,
सूख चुका जीवन का रस है,
अपनी गिरी अवस्था में भी
किसे देख कुछ कुछ सस्मित हैं ?
क्या बोलें ये सुमन दलित हैं ?

कभी न जो निज गौरव भूले,
मृदु पल्लव-पलनों पर झूले,
देखो जग की निष्ठुरता को
होते वही काल - कवलित हैं;
क्या बोलें ये सुमन दलित हैं ?

२९

कैसे जीवन पार करे ?

न्याय-प्रिय प्राणी मानव है,
न वह चतुष्पद या दानव है,
फिर नृशंसता का सदैव वह
किस प्रकार सत्कार करे ?
कैसे जीवन पार करे ?

उसके तन में भी तो उर है,
और रगों में रक्त प्रचुर है,
किस प्रकार फिर निर्दयता से
वह कोमल व्यवहार करे ?
कैसे जीवन पार करे ?

अत्याचार नहीं रुकते हैं,
शीश न क्रूरों के झुकते हैं,
वह अपनी दुर्बलताओं से
कब तक जग में प्यार करे ?
कैसे जीवन पार करे ?

३०

कैसा निठुर व्यवहार ?

झाड़ में छिप क्रूर व्याधा ने बिछाया जाल,
दीन पक्षी एक उसमें आ फँसा तत्काल,
शीघ्र ही वह छटपटा कर हो गया बेहाल,
बोला न कुछ संसार,
कैसा निठुर व्यवहार ?

निरपराध कुरंग को मारा बधिक ने बाण,
और गिरकर हो गया वह शीघ्र ही म्रियमाण,
देखकर यह दृश्य भी हँसता रहा पाषाण,
न हुआ दया-संचार,
कैसा निठुर व्यवहार ?

दुष्ट माली ने लता के अङ्ग-अङ्ग मरोड़,
छोड़कर ममता लिये फल फूल सारे तोड़,
वह गया तत्क्षण पवन कहता हुआ मुँह मोड़,
उसका यही है प्यार,
कैसा निठुर व्यवहार ?

३१

कैसे रहे विश्वास ?

नित्य अपलक लोचनों से चन्द्रमा की ओर,
देखता है रात में सुख से विभोर चकोर;
किन्तु ममता-हीन शशि जाता सदा है छोड़
उसको अतीव उदास,
कैसे रहे विश्वास ?

मंद मलयज-दोल पर आनन्द-मद से झूल,
देखकर मधुमास को हैं फूल उठते फूल,
पर अकारण अन्त में करता प्रयाण वसन्त
देकर उन्हें निश्वास;
कैसे रहे विश्वास ?

विश्व में विख्यात है यह दिव्य प्रेम-प्रसङ्ग,
टूटते दीपक शिखा पर हैं सदैव पतङ्ग,
पर उन्हें है भस्म कर देता उसी का ज्वाल
करके निठुर परिहास;
कैसे रहे विश्वास ?

३२

अरे जर्मनी विश्व त्रस्त है
है तेरा यह रूप भयङ्कर !

करता है तू सदा प्यार से
निर्दय पशु-बल का आराधन,
बर्बर युग का तूने फिर से
किया विश्व में है संस्थापन,
काँप रही है धरणी थर-थर;
है तेरा यह रूप भयङ्कर !

मानवता की मृदु प्रतिमा का
करके निष्ठुरता से खण्डन,
एक दानवी महाशक्ति को
तू ने सौंप दिया है जीवन,
उसका ही प्रतिनिधि है हिटलर;
है तेरा यह रूप भयङ्कर !

न्याय दया औदार्य प्रेम में
है मानव का निज अपनापन,
मिटा रहा है जगतीतल से
तू उसका वह चिर-संचित धन,
हैं बढ़ रहे मोह मद मत्सर;
है तेरा यह रूप भयङ्कर !

देख नग्न नर्तन पशुता का
पीड़ित अबलों का सुन क्रंदन,
मूर्छित है सभ्यता विश्व की
मर्म व्यथा से है जग उन्मन,
कम्पित है भू-सागर अम्बर;
है तेरा यह रूप भयङ्कर !

३३

है कैसा उन्माद ?

विश्व-वाटिका उजड़ रही है,
न्याय-व्यवस्था बिगड़ रही है,
बस बर्बरता अकड़ रही है,
पर हिटलर है नहीं तनिक भी
मन में तुझे विषाद;
है कैसा उन्माद ?

हुए असंख्य मनुष्य व्यथित-मन,
नष्ट हो गये अगणित जीवन,
हुआ विनष्ट अपरिमित जन-धन,
तुझे नहीं चिन्ता है कितने
भग्न हुए प्रासाद;
है कैसा उन्माद ?

जन-समूह-संहार देख कर,
दया-द्रवित है अखिल चराचर,
घर घर में शोकाकुल हैं नर,
रोता है सब विश्व किन्तु तू
हँसता है साह्लाद;
है कैसा उन्माद ?

३४

है कैसी यह भूल ?

मनुज-रुधिर से सींच सींच कर,
विजित शत्रु के दृग-जल से भर,
जिसे बढ़ाया तूने हिटलर,
काट रहा है निज हाथों से
उसी विटप का मूल;
है कैसी यह भूल ?

जिन्हें हृदय में रहा छिपाये,
आशा जिन पर रहा लगाये,
जो न कभी विकसित हो पाये,
उन्हीं मनोरथ-फूलों को तू
बना रहा है धूल;
है कैसी यह भूल ?

बनकर निर्दय नाजीवादी,
तूने नर में पशुता ला दी,
निष्ठुरता की हद दिखला दी,
फूलों के भी मृदु उर में तू
हूल रहा है शूल,
है कैसी यह भूल ?

३५

क्या न बुझेगी तेरी प्यास ?

अगणित मनुजों का संहार,
देख चुका है यह संसार,
है बह रही रुधिर की धार,
किन्तु समझता है रे हिटलर !
तू इसको केवल परिहास !
क्या न बुझेगी तेरी प्यास ?

तूने कर छल छद्म विशेष,
नष्ट किये कितने ही देश,
तो भी तुझको हुआ न क्लेश,
दे कुछ उत्तर पूछ रहा है
नीचे झुककर यह आकाश;
क्या न बुझेगी तेरी प्यास ?

रोती सी हैं सभी दिशायें,
हुईं भयङ्कर मलिन निशायें,
क्या लेकर अब दिन भी आयें ?
कभी प्रकाश न होने पाता
कब तक देगा जग को त्रास ?
क्या न बुझेगी तेरी प्यास ?

३६

मत कर तू अभिमान !

न्याय सत्य में ही क्षमता है,
तुझमें केवल निर्ममता है,
कर सकता क्या तू समता है,
मृदुल सुमन भी बन जायेंगे
तुझको वज्र-समान;
मत कर तू अभिमान !

देख न सकता तू लोचन से,
तेरा नाश छिपा है घन से,
झाँक रहा है शून्य गगन से,
वायुयान बनकर लायेगा
उसे शीघ्र पवमान;
मत कर तू अभिमान !

भूल न हिटलर, निज निर्बलता,
होगी कैसे तुझे सफलता ?
तू अपने को ही है छलता;
सर्व-शक्ति-सम्पन्न विश्व है
तू क्या है बलवान ?
मत कर तू अभिमान !

३७

कब तक जग को और छलेगा ?

तू ने की हैं जो जो घातें,
दिन में दिखलाई हैं रातें,
छिपी नहीं हैं वे सब बातें,
जो कुछ भेद छिपा है अब भी
वह भी तो बाहर निकलेगा;
कब तक जग को और छलेगा ?

तेरे निर्दय व्यवहारों से,
अन्यायों, अत्याचारों से,
अविचारों, स्वेच्छाचारों से,
पीड़ित है जगतीतल सारा
तू पाषाण नहीं पिघलेगा;
कब तक जग को और छलेगा ?

कब तक मानव मौन रहेगा ?
कब तक वह दुख-क्लेश सहेगा ?
व्यथा-कथा उर स्वयं कहेगा,
जिसे रोक रक्खा पलकों ने
वह भी लोचन-वारि ढलेगा;
कब तक जग को और छलेगा ?

तू ने जग में आग लगाई,
देश-देश में है फैलाई,
आहुति दे-दे नित्य बढ़ाई,
क्या यह नहीं समझता हिटलर;
तू भी उसमें स्वयं जलेगा ?
कब तक जग को और छलेगा ?

३८

मत व्यर्थ निज गुण-गान कर !

तूने जला कर बहु नगर,
कर नष्ट गणनातीत घर,
अगणित जनों के प्राण हर,
जो पाप का घट है भरा
उस पर न तू अभिमान कर;
मत व्यर्थ निज गुण-गान कर !

लड़ता रहे तू आयु भर,
तो भी न जीतेगा समर,
आदर्श हैं जग के अमर,
ध्रुव है सदा उनकी विजय
उनका तनिक सम्मान कर;
मत व्यर्थ निज गुण-गान कर !

कब तक दुखी यह जग रहे,
कितनी व्यथा उर की सहे,
तुझसे कहे तो क्या कहे,
तू पीड़ितों को कोसता है
दोष भी निज जान कर;
मत व्यर्थ निज गुण-गान कर !

३९

कर ले दृढ़ निज वक्ष !

जो मानव में नैतिक बल है,
जो उसका आदर्श विमल है,
उनका पोषक विश्व सकल है,
क्या तू विजयी हो सकता है
उनके कभी समक्ष ?
कर ले दृढ़ निज वक्ष ।

तुझे शक्ति ने अन्ध बनाया,
वर विवेक से दूर हटाया,
तू कदापि यह जान न पाया,
हो सकता है नहीं पराजित
न्याय सत्य का पक्ष,
कर ले दृढ़ निज वक्ष !

तू ने भीषण रूप दिखाया,
जग को है भयभीत बनाया,
अबलों को है सदा सताया,
कुफल उसी का तू चखता है
मूढ़ देख प्रत्यक्ष;
कर ले दृढ़ निज वक्ष !

४०

रोम, निज प्राचीन गौरव
तू गया है भूल !

है मदान्ध मसोलिनी को इष्ट निज उत्कर्ष,
घोर अत्याचार करने में उसे है हर्ष,
कर चुका अगणित नरों का वह वृथा संहार,
रोम ! तुझ पर आज उसका पूर्ण है अधिकार,
शीश पर तू ने चढ़ाई
निज चरण की धूल !

शान्तिमय अबिसीनिया था सर्वथा निर्दोष,
रोम ! क्यों उस पर हुआ तेरा अकारण रोष ?
हो गई तेरी निठुर साम्राज्य-लिप्सा पूर्ण,
किन्तु वह मिट भी गया साम्राज्य तेरा तूर्ण,
चार दिन खिलकर विपिन में
झड़ गया है फूल !

जर्मनी से फ्रान्स तो योंही रहा था हार,
किन्तु तू ने भी किया उस पर कठोर प्रहार,
शूरता सचमुच दिखाई रोम ! तूने खूब,
हाँ, उसे तूने डुबाया जो रहा था डूब,
किन्तु क्या वह नीचता
तुझको हुई सुख-मूल ?

हो गई तेरी दशा है रोम, आज विचित्र,
रह गया है जर्मनी ही एक तेरा मित्र,
क्या मिला इस मित्रता का है तुझे उपहार ?
नाजियों को दासता करनी पड़ी स्वीकार;
फूल सा कोमल सुखद कब
बन सका है शूल ?

४१

क्यों अपने को तू छलता है ?

ऐसा माया-जाल बिछाया,
अपने को है स्वयं फँसाया,
कैसा धोखा तू ने खाया,
ऐसी तू ने आग लगाई
तेरा देश स्वयं जलता है;
क्यों अपने को तू छलता है ?

नष्ट किया है जिनका जीवन,
वे भी तेरा करें समर्थन,
यही चाहता है तू दुर्मन,
क्या कदापि विपरीत दिशा में
पानी का प्रवाह चलता है ?
क्यों अपने को तू छलता है ?

ऐ मसोलिनी अत्याचारी !
तुझसे हुई भूल है भारी,
व्यर्थ हुई चेष्टायें सारी,
क्या वह विजयी हो सकता है
जिसमें नैतिक निर्बलता है ?
क्यों तू अपने को छलता है ?

तुझे इष्ट है जग का शासन,
पर केवल पशुबल-आराधन,
है तेरा कल्मषमय साधन,
तनिक सोच क्या विष-पादप में
कभी अमृत फल भी फलता है?
क्यों अपने को तू छलता है?

४२

रे जग-शत्रु महान !

तू मसोलिनी, जग में आया,
लेकर मानव की ही काया,
पर उसमें था दनुज समाया,
तू बन गया नाश का कारण
कर मिथ्या अभिमान,
रे जग-शत्रु महान !

रोम सुखी सम्पन्न देश था,
जग में सम्मानित विशेष था,
उसे किसी से नहीं द्वेष था,
किन्तु गिराया तूने उसको
कर शठता का मान;
रे जग-शत्रु महान !

तूने बर्बर रूप दिखाया,
पर यह कभी नहीं बतलाया,
तू फैसिज्म कहाँ से लाया,
हिटलर के समान तू भी है
कपटी क्रूर अजान;
रे जग-शत्रु महान !

४३

कब तक देखें जग-लोचन ?

निरपराध का हनन, निर्बलों का उत्पीड़न,
लघु प्रसून का दलन, मृदु द्रुमों का उन्मूलन,
यह नृशंसता का नर्तन,
कब तक देखें जग-लोचन ?

निर्दयता की घोर घटा का, अकरुण गर्जन,
बर्बरता का विश्व-हृदय-भयकारी तर्जन,
मृदु मनुष्यता का मर्दन,
कब तक देखें जग-लोचन ?

जग की निष्ठुर सबल शक्तियों का आलिङ्गन,
मनुज-रक्त से रँगे करों का सादर चुम्बन,
यह पशुबल का आराधन,
कब तक देखें जग-लोचन ?

विश्व-सभ्यता की ललाम प्रतिमा का खण्डन,
नैतिकता की मृदु मनोज्ञ लतिका का भञ्जन,
कोमल कलियों का क्रन्तन,
कब तक देखें जग-लोचन ?

४४

शौर्य-धैर्य-निधान है तू
विज्ञ इंग्लिस्तान !

देख अबलों पर अकारण घोर अत्याचार,
देखकर निर्दोष जनता का महा संहार,
हाथ पर धर हाथ बैठेगा मनस्वी कौन ?
वीर तू रहता भला किस भाँति निष्क्रिय मौन ?
कर रहा है प्रेम-पूर्वक
तू अतुल बलिदान !

हो रही है वृष्टि बम की नित्य तुझ पर घोर,
कर रही है नृत्य ताण्डव मृत्यु चारों ओर,
विपुल वैभव-कोष तेरा हो रहा है नष्ट,
सह रहे हैं रात दिन सब लोग अगणित कष्ट,
पर नहीं विचलित हुआ तू
है न किञ्चित् म्लान !

शत्रु के सम्मुख सदा रहकर अचल दृढ़-वक्ष,
कर रहा है युद्ध लेकर न्याय का तू पक्ष,
कर चुकी है पाशविक सत्ता जिन्हें बरबाद,
दे रहे हैं वे तुझे सब देश आशीर्वाद,
कर रहा संसार है तेरे
गुणों का गान !

हो गया तेरा विफल जब शान्ति का उद्योग,
तब तुझे करना पड़ा निज शस्त्र का उपयोग,
फ्रान्स ने स्वीकार कर ली शत्रुओं की जीत,
तू अकेला था, हुआ तो भी न तू भयभीत।
कर न सकता तू कभी
पशु-शक्ति का सम्मान!

है तुझे भय, हो नहीं साम्राज्य तेरा नष्ट,
क्यों नहीं फिर तू लड़े, बहु भोगकर भी कष्ट?
शत्रु की सत्ता अपरिमित है मदान्ध कठोर,
विश्व की सद्भावना है किन्तु तेरी ओर।
कर रहा है क्रूर अरि का
चूर तू अभिमान!

४५

बरस रहे हैं बम विकराल !

महा प्रलय के वारिद-दल से
वायुयान घूमते गगन में,
वज्रनाद होता है पल पल
तोपें चलती हैं लन्दन में,
फैल रहा है ज्वाला-मालः
बरस रहे हैं बम विकराल !

नष्ट हो रहे हैं कितने ही
अस्पताल एवं गिरजाघर,
क्षार हो रही है जल जलकर
कला-सृष्टियाँ विविध मनोहर
भग्न हो रहे भवन विशाल,
बरस रहे हैं बम विकराल !

सुत-विहीन होकर भी विचलित
होती नहीं वीर मातायें,
पति-विहीन होकर भी धीरज—
खोती नहीं वीर बालायें,
सहती हैं दुस्सह दुख-ज्वाल,
बरस रहे हैं बम विकराल !

कहीं पड़े हैं बालक आहत
और कहीं हैं पड़े मृतक नर,
कहीं कोमलाङ्गी ललनायें
छिन्न गात हैं पड़ी भूमि पर,
मनुज बन रहे हैं कङ्काल,
बरस रहे हैं बम विकराल !

नृत्य गान हो रहा कहीं पर
कहीं चित्रपट कहीं थियेटर,
बालक देख रहे हैं ऊपर
वायुयान का युद्ध भयङ्कर,
मृत्यु नाचती है दे ताल,
बरस रहे हैं बम विकराल !

पृथ्वी के नीचे शेल्टर में
छिपते हैं जाकर नारी-नर,
पर ये आग बुझानेवाले
आग बुझाने में हैं तत्पर,
इन्हें देख विस्मित है काल;
बरस रहे हैं बम विकराल !

४६

हम हैं शूरों की सन्तान !

मृदु प्रसून से हम कोमल हैं,
पर न किसी से हम निर्बल हैं,
वज्र-प्रहार सदा सहते हैं
किन्तु न सहते हैं अपमान;
हम हैं शूरों की सन्तान !

आदर्शों पर दृढ़ रहते हैं,
हम दुख सङ्कट को सहते हैं,
जो न कभी विचलित होते हैं
करते हम उनका सम्मान;
हम हैं शूरों की सन्तान !

नहीं शत्रु से हम डरते हैं,
सदा हर्ष से हम मरते हैं,
निज कर्त्तव्यों के पालन में
करते हैं सहर्ष बलिदान;
हम हैं शूरों की सन्तान !

४७

हमें मृत्यु से भीति नहीं !

कम्पमान हो चाहे भूधर,
मर्यादा-विरहित हो सागर,
गिरे भले ही गगन मही पर,
पर दानवता से हो सकती
कभी हमारी प्रीति नहीं;
हमें मृत्यु से भीति नहीं !

कितनी ही विपत्तियाँ आयें,
कितने ही बम अरि बरसायें,
चाहे हम विनष्ट हो जायें,
पर नृशंसता में हो सकती
हमको कभी प्रतीति नहीं;
हमें मृत्यु से भीति नहीं !

सम्भव है जग में सब सहना,
दीन दुखी होकर भी रहना,
नित चिन्ता-सागर में बहना,
पर पशुता को शीश झुकाना
है मानव की रीति नहीं;
हमें मृत्यु से भीति नहीं !

४८

हम न भीरु कहलायेंगे !

पशुबल जी भर हमें सता ले,
चाहे हमें पीस ही डाले,
पर हम कभी नहीं आदर से
उसको शीश झुकायेंगे;
हम न भीरु कहलायेंगे !

एक नहीं सौ हिटलर आयें,
शत-शत साथ शतघ्नी लायें,
पर हम उनसे डरकर पीछे
कभी न पैर हटायेंगे;
हम न भीरु कहलायेंगे !

सुन लें जगती के जन सारे,
साक्षी रहें गगन के तारे,
कट जायेंगे, मर जायेंगे
पर न दैन्य दिखलायेंगे;
हम न भीरु कहलायेंगे !

४९

गायें हम वीरों के गान !

कर बर्बरता का मद चूर,
करें क्लेश जग के हम दूर,
नहीं डरेंगे हम हैं शूर,
रखकर निज गौरव का ध्यान;
गायें हम वीरों के गान !

हैं हम भी मानव सन्तान,
निर्विकार निर्भय बलवान,
नहीं सहेंगे हम अपमान,
है हम में स्वदेश-अभिमान;
गायें हम वीरों के गान !

बहन करेंगे सब दुख-भार,
हम हैं मरने को तैयार,
कभी न हम मानेंगे हार,
देगा हमें विश्व सम्मान;
गायें हम वीरों के गान !

५०

क्या होगा परिणाम ?

मानवता की शक्ति अटल है,
दानवता भी बहुत प्रबल है,
है हो रहा सृष्टि में फिर से
देवासुर - संग्राम;
क्या होगा परिणाम ?

साथ हमारे विश्व-हृदय है,
हमें शत्रुओं से क्या भय है ?
क्या सोचें हम भला बैठकर
लुटता है धन धाम ?
क्या होगा परिणाम ?

न्याय-युद्ध हमको करना है,
भय-संकट जग का हरना है,
यह विचार करना न कभी है
हम वीरों का काम;
क्या होगा परिणाम ?

५१

वीर भारत-पुत्र हो तुम
विश्व में विख्यात !

सत्य में श्रद्धा तुम्हें है न्याय से है प्रीति,
है तुम्हें निज बाहुबल पर गर्व और प्रतीति,
सह्य है न तुम्हें कभी अन्याय और अनीति,
है न ईश्वर के सिवा तुमको किसी से भीति,

है तुम्हें अच्छी न लगती
छल-कपट की बात !

हो सका न ब्रिटेन तुम्हारे प्रति विमल समुदार,
की तुम्हारी माँग समुचित भी नहीं स्वीकार,
अस्तु, स्वेच्छा से न तुमने लिया रण में भाग,
पर किया उसके लिये तुमने अपरिमित त्याग,

क्रूर को भी सुरभि देता
है सदा जलजात !

पददलित अबिसीनिया बलहीन और मलीन,
था झुकाये शीश अपना दुःख-चिन्ता-लीन,
रोमनों ने था लिया स्वातंत्र्य उसका छीन,
है तुम्हें भी श्रेय जो वह फिर हुआ स्वाधीन,

हो गया फिर से वहाँ
सुंदर नवीन प्रभात !

क्रूर जर्मन कर रहे हैं घोर अत्याचार,
हो गये गर्वान्ध हैं वे भूल पिछली हार,
फिर उन्हें नीचा दिखाना है तुम्हें इस बार,
वे लड़ें उस पार या आकर लड़ें इस पार,
पीठ दिखलाना समर में
है तुम्हें अज्ञात !

लीबिया-एरीट्रिया में कर कठिन संग्राम,
हो चुके तुम हो प्रमाणित शौर्य-साहस-धाम,
कर चुकी तुमको यशस्वी सीरिया की जीत,
गा रहे हैं सब तुम्हारी वीरता के गीत,
है कथा सीदीबरानी की
सभी को ज्ञात !

प्रेम के तुम हो पुजारी अतुल करुणा-धाम,
शान्ति के तुम हो उपासक विश्व-बन्धु अकाम,
किन्तु निर्दय नीच को देते सदा तुम दण्ड,
युद्ध में तुम हो दिखाते रुद्र रूप प्रचण्ड,
देख सकते हो नहीं
तुम विश्व में उत्पात !

बढ़ गया है विश्व में अति निन्द्य नाजीवाद,
है प्रकट उसमें हुआ पशु-शक्ति का उन्माद,
कर रहा है विश्व की सुख-शान्ति का वह नाश,
किन्तु आशा ही नहीं, है यह तुम्हें विश्वास,
अन्त में निश्चय मिटेगी
यह भयङ्कर रात !

५२

जग का दुख हमको हरना है।

जो जग-शान्ति भङ्ग करते हैं,
जो कल्मष-घट को भरते हैं,
उनसे हम न कभी डरते हैं,
जग की कोमल मानवता को
मरकर हमें अमर करना है;
जग का दुख हमको हरना है।

अत्याचारी को न लाज है,
उस की शक्ति अदम्य आज है,
दुखी सकल मानव समाज है,
जग-सुख का सर सूख रहा है
उसमें हमें रुधिर भरना है;
जग का दुख हमको हरना है।

मानवता से हमें प्रीति है,
शुद्ध हमारी राजनीति है,
नहीं किसी से हमें भीति है,
हम हैं सैनिक भारतवासी
हमें समर में ही मरना है,
जग का दुख हमको हरना है।

५३

गायें सब मिलकर यह गीत !

हो पशुबल का शीघ्र विनाश,
रहे न अब यह विश्व उदास,
हो मन में सद्बुद्धि विकास,
न्याय सत्य की ही हो जीत;
गायें सब मिलकर यह गीत !

मिटें जगत के अत्याचार,
बर्बरता का हो संहार,
कुछ तो हल्का हो भू-भार,
अभिमानी भी बनें विनीत;
गायें सब मिलकर यह गीत !

युद्ध-वारिदों का हो नाश,
फिर से हो निर्मल आकाश,
शान्ति-सुधाकर करे प्रकाश,
रहे नहीं यह विश्व सभीत;
गायें सब मिलकर यह गीत !

५४

मृत्यु से क्यों हम डरें ?

उस भयङ्कर दानवी से
कौन डरकर बच सका,
क्या अमर इस मर्त्य जग में
विधि किसी को रच सका ?
फिर भला हम श्वान-सा
भयभीत होकर क्यों मरें ?
मृत्यु से हम क्यों डरें ?

कुछ करे कोई किसी को
वह नहीं है छोड़ती,
अन्त में सम्बन्ध सब का
वह जगत से तोड़ती,
फिर न क्यों निर्भीकता से
विश्व-सागर हम तरें ?
मृत्यु से क्यों हम डरें ?

प्रिय जनों को क्या भला
वह छीन ले जाती नहीं ?
वह बिलखने से किसी पर
है दया लाती नहीं,
वीरता से क्यों न फिर हम
सामना उसका करें ?
मृत्यु से क्यों हम डरें ?

दूर से जितनी भयङ्कर
है जगत - संहारिणी,
है निकट से वह नहीं
उतनी अधिक भयकारिणी,
व्यर्थ उसकी कल्पना से
आह फिर क्यों हम भरें ?
मृत्यु से क्यों हम डरें ?

५५

हम चाहते हैं बस यही !

प्रति देश की वह नीति हो,
जिसमें सदैव प्रतीति हो,
जग में परस्पर प्रीति हो,
संसार को जो मान्य है
हो मान्य सब को भी वही;
हम चाहते हैं बस यही !

हो बन्द पापाचार यह,
निर्दोष जन-संहार यह,
छल छद्म का व्यवहार यह,
संसार के मत-भेद का
निर्णय करें नय तर्क ही;
हम चाहते हैं बस यही !

संसार में फिर शान्ति हो,
सब दूर मन की भ्रान्ति हो,
शुभकारिणी ही क्रान्ति हो,
निज श्रेय का निज ध्येय का
निश्चय करे संसार ही;
हम चाहते हैं बस यही !

५६

हुआ अचानक वज्र-प्रहार !

नीच नाजियों से मैत्री का
कुफल रूस को प्राप्त हुआ,
जो था घोषित हुआ विश्व में
वह सम्बन्ध समाप्त हुआ,
हुई धूर्तता है साकार !

हैं ये टैंक जा रहे किम्वा
भूधर हैं गतिमान हुए ?
छिपे सभी नक्षत्र व्योम में
अथवा मारुतयान हुए ?
होने लगा घोर संहार।

कितना जन-संहार हुआ है
है कितना धन-नाश हुआ ?
रुधिरमयी हो गई मेदिनी
ज्वालामय आकाश हुआ,
दोनों है अब एकाकार !

नष्ट भ्रष्ट हो रहा रूस है
पर है शिथिल-विचार नहीं,
मर मिटने की भीति नहीं है
उसे हार स्वीकार नहीं,
वह न सहेगा अत्याचार।

जो कुछ सोचा था हिटलर ने
वह न रूस का हाल हुआ,
ज्यों ज्यों बढ़ा शत्रु दल रण में
त्यों त्यों वह विकराल हुआ,
शिथिल न उसका हुआ विचार!

जग में कभी भयानक ऐसा
है न और संग्राम हुआ,
शौर्य और साहस में रूसी
सेनाओं का नाम हुआ,
स्तम्भित है सारा संसार!

५७

देखो, देखो वह समरस्थल !

गिरता है तुषार अवनी पर,
शीत-व्यथा से हैं व्याकुल नर,
कितने ही गिर गये ठिठुर कर,
श्वेत-वर्ण हिमवती वसुमती
रक्त-वर्ण होती है पल पल;
देखो, देखो वह समरस्थल !

सुन कर तोपों का भीषण स्वर,
कँपती है वसुंधरा थर थर,
सैनिक गिरते हैं कट कट कर,
छिन्न-गात मनुजों के शव से
धरणी भरती है निज अंचल;
देखो, देखो वह समरस्थल !

सेना-नायक भी अवनी पर,
पड़ा हुआ है भेद भूल कर,
एक साथ हैं पड़े अश्व नर,
कितने ही प्रासाद ध्वस्त हैं
जो नभ को छू लेते थे कल;
देखो, देखो वह समरस्थल !

कहीं पैर हैं और कहीं कर,
कहीं शीश हैं लुंठित भू पर,
रुधिर सनी है देह भयङ्कर,
कितने ही समृद्ध नगरों को
भस्म कर चुका है समरानल;
देखो, देखो वह समरस्थल !

हैं शतघ्नियाँ अनल उगलती,
पलपल बन्दूकें हैं चलती,
आहें बनकर धूम्र निकलती,
करता है सामना मृत्यु का
धीर वीर सैनिक दल अविचल;
देखो, देखो वह समरस्थल !

५८

परम शक्तिशाली जापान !

इस प्रकार तू हुआ समुन्नत
विश्व देख कर चकित हुआ,
अल्पकाल में ही तू जग की
महाशक्ति परिगणित हुआ,
था अद्भुत तेरा उत्थान;
परम शक्तिशाली जापान !

तुझे एशिया ने निज गौरव
सभी भाँति स्वीकार किया,
कितने ही देशों में तूने
आशा का सञ्चार किया,
मिला तुझे सबसे सम्मान;
परम शक्तिशाली जापान !

विपुल-शक्ति-सम्पन्न रूस से
जब तेरा संग्राम हुआ,
दाँत कर दिये खट्टे तूने
जग में तेरा नाम हुआ,
सबने लिया तुझे पहचान;
परम शक्तिशाली जापान !

पर अति शक्तिवान होकर तू
अंहकार में चूर हुआ,
शूर रहा जितना पहले तू
उतना ही तू क्रूर हुआ,
रहा न अपनेपन का ज्ञान;
परम शक्तिशाली जापान !

निरपराध बलहीन चीन पर
तूने अत्याचार किया,
एक रुचिर सुकुमार सुमन पर
कैसा निठुर प्रहार किया ?
बौद्ध धर्म का रहा न ध्यान,
परम शक्तिशाली जापान !

कपटी क्रूर नाजियों पर भी
तूने है विश्वास किया,
अपने वर विवेक का तूने
स्वयं बड़ा उपहास किया,
ज्ञानवान तू बना अजान,
परम शक्तिशाली जापान !

ब्रिटेन और अमरीका से भी
तूने छल-व्यवहार किया,
उनकी चिरकालिक मैत्री पर
नहीं तनिक भी ध्यान दिया,
दिखलाया कितना अज्ञान ?
परम शक्तिशाली जापान !

अपने आदर्शों का तूने
है कैसा बलिदान किया ?
सम्मानित नैतिक सत्ता का
तूने है अपमान किया,
है तेरा यह पतन महान;
परम शक्तिशाली जापान !

गिरा रहा है तू अपने को
यह क्या कभी विचार किया ?
अपने ही पैरों पर तूने
स्वयं कुठार-प्रहार किया,
हुआ दुखद परिणाम निदान;
परम शक्तिशाली जापान !

५९

हे चीन पुण्य प्राचीन देश !

था निज वैभव से तुझे तोष,
था नहीं किसी पर तुझे रोष,
तू था उन्नति-कामी अदोष,
था तुझे न किंचित् राग-द्वेष,
हे चीन पुण्य प्राचीन देश !

जब हुआ तुझे कुछ आत्मज्ञान,
आत्मावलम्ब आत्माभिमान,
जब हुआ नये युग का विहान,
तब औरों को क्यों हुआ क्लेश ?
हे चीन पुण्य प्राचीन देश !

तुझको विलोक कर प्रगतिवान,
तेरी उन्नति का नव विधान,
जापान हुआ चिन्तित महान,
क्या शत्रु रहा वह मित्र-वेष ?
हे चीन पुण्य प्राचीन देश !

आक्रमण हुआ तुझ पर कठोर,
आरम्भ हुआ संग्राम घोर,
मच गई खलबली सभी ओर,
कर लिया शत्रु दल ने प्रवेश;
हे चीन पुण्य प्राचीन देश !

सह सका न तू यह असम्मान,
पशु सत्ता का मिथ्याभिमान,
तू हुआ तनिक भी नहीं म्लान;
लड़ रहा वीरता से विशेष;
हे चीन पुण्य प्राचीन देश !

संहार हो चुका है अपार,
हो रहा नित्य तुझ पर प्रहार,
वह रही निरन्तर रुधिर-धार,
पर है तुझमें भय का न लेश;
हे चीन पुण्य प्राचीन देश !

यह देख पाशविक महायुद्ध;
वे बुद्ध दयासागर प्रबुद्ध;
होते कितने सन्तप्त क्रुद्ध ?
हैं विस्मृत उनके सदुपदेश;
हे चीन पुण्य प्राचीन देश !

६०

देखो दशा मृदुल फूलों की !

जो सदैव हँसते रहते थे,
निज रस-धारा में बहते थे,
सुख के ही दुख भी सहते थे,
वे ही अब कितने मलीन हैं
खाकर चोट निठुर शूलों की ?
देखो दशा मृदुल फूलों की !

जब निदाघ ने इन्हें सताया,
तब न किसी ने इन्हें बचाया,
दृग-जल से न कभी नहलाया,
इनकी क्लेश-कथाओं में हैं
संस्मृतियाँ जग की भूलों की;
देखो दशा मृदुल फूलों की !

पादप हैं निज शीश झुकाये,
मृदु पल्लव भी हैं कुम्हलाये,
फिरते मधुकर हैं घबराये,
लतिकाएँ भी मुरझाई हैं
इनके रस-सरिता-कूलों की;
देखो दशा मृदुल फूलों की !

६१

संयुक्त राज्य उन्नत उदार !

आदर्शों का रक्षक प्रधान,
है न्याय-सत्य-पोषक महान,
सन्मार्ग प्रदर्शक ज्ञानवान,
है तुझमें सञ्चित शुचि विचार;
संयुक्त राज्य उन्नत उदार !

है तू स्वतंत्रता का निवास,
है तू मानवता का विकास,
है प्रेम-प्रभाकर का प्रकाश,
है शांति-सुधा-सागर अपार;
संयुक्त राज्य उन्नत उदार !

अन्यायों पर है तुझे क्रोध,
अत्याचारों से है विरोध,
खलती तुझको पशुता अबोध,
तू देख न सकता अनाचार;
संयुक्त राज्य उन्नत उदार !

हो रहे नष्ट थे अबल देश,
मिटती थी नय सत्ता अशेष,
यह देख तुझे था परम क्लेश,
तूने रक्षा का लिया भार;
संयुक्त राज्य उन्नत उदार !

तूने रण में दे उचित योग,
ला दिया शान्ति का फिर सुयोग,
पर कर तूने अणु - बम प्रयोग,
कर दिया दनुजता का प्रचार;
संयुक्त राज्य उन्नत उदार !

हरा भरा फिर से कब होगा यह सुन्दर उद्यान ?

कोमल कलियाँ हैं कुम्हलाईं,
वल्लरियाँ भी हैं मुरझाईं,
भ्रमरावलियाँ हैं घबराईं,

कभी नहीं सुन पड़ता है अब
कोकिल का कलगान;

हरा भरा फिर से कब होगा यह सुन्दर उद्यान ?

है उलूक ने डाला डेरा,
शाखामृग ने किया बसेरा,
है प्रकाश में यहाँ अँधेरा,

रस की बूँद हुई है दुर्लभ,
हुआ बदन है म्लान;

हरा भरा फिर से कब होगा यह सुन्दर उद्यान ?

जग के सब दुख-क्लेश सहेंगे,
तो भी पादप अचल रहेंगे,
दलित सुमन कुछ नहीं कहेंगे,

व्यर्थ नहीं हो सकता इनका
कभी अतुल बलिदान;

हरा भरा फिर से कब होगा यह सुन्दर उद्यान ?

६३

फिर से खिलेंगे वे सुमन !

जिनका हुआ असमय पतन,
छूटा अकारण सुख-सदन,
पशु ने किया जिनका दलन,
जीवन उन्हें देगा पवन;
फिर से खिलेंगे वे सुमन !

जग है बदलता जा रहा,
मधुमास फिर है आ रहा,
पिक प्रेम से है गा रहा,
सुन लो यही कहता गगन;
फिर से खिलेंगे वे सुमन !

वीरत्व जग में शेष है,
समवेदना का लेश है,
आशा यही सविशेष है,
संसार होगा मुदित मन;
फिर से खिलेंगे वे सुमन !

६४

क्या है हुआ परिणाम ?

नतशीश हैं होकर पराजित
जर्मनी जापान,
अभिशाप भीषण बन गया
उनका अतुल उत्थान,
संसार में है हो रहा
अब शान्ति का संग्राम;
क्या है हुआ परिणाम ?

संसार अब है बन गया
उजड़ा हुआ उद्यान,
जो नष्ट होने से बचे
वे तरु लता हैं म्लान,
सब ओर दिखते चिन्ह हैं
विध्वंस के उद्दाम;
क्या है हुआ परिणाम ?

हैं हो गये अगणित मनुज
असहाय दुर्विध दीन,
हैं घूमते लाखों मनुज
दुख से दलित गृह-हीन,
गति-हीन दीन मलीन हैं
जो देश थे अभिराम;
क्या है हुआ परिणाम ?

अपनी विजय पर राष्ट्र जो
हैं उछलते सानन्द,
उनके हृदय में भी नहीं
है हर्ष-ज्योति अमन्द,
क्या हैं न उनके भी जले
बहु नगर ग्राम ललाम?
क्या है हुआ परिणाम?

—

६५

कौन विजेता कौन विजित है ?

नष्ट हो चुका दोनों का धन,
दुखमय है दोनों का जीवन,
चिन्ताकुल है दोनों का मन,
विजय पराजय दोनों में ही
दुःखक्लेश वेदना निहित है;
कौन विजेता कौन विजित है ?

सुत-विहीन हैं बहु अबलायें,
व्याकुल हैं अगणित विधवायें,
वे हैं वाणीमयी व्यथायें,
उनके करुणामय क्रन्दन से
दोनों ही का हृदय व्यथित है;
कौन विजेता कौन विजित है ?

दोनों के देशों की अवनी,
है मलीन नर-रुधिर से सनी,
क्लेश-कथा सी स्वयं है बनी,
ह्रास-नाश के चिन्हों में ही
सन्तापों का स्रोत अमित है;
कौन विजेता कौन विजित है ?

कितने ही मुँद गये नयन हैं,
अङ्गहीन कितने ही जन हैं,
कितने ही गिर गये भवन हैं,
नव-निर्माण प्रश्न दोनों के
सम्मुख रहता समुपस्थित है;
कौन विजेता कौन विजित हैं ?

———

६६

मिटा न जग का त्रास !

युद्ध बन्द हो गया रुक गया
बर्बरता का नर्तन,
नाजी दल की विभीषिका से
मुक्त हुआ जग-जीवन,
किन्तु हिटलरी मनोवृत्ति का
हुआ न अब तक नाश;
मिटा न जग का त्रास !

पिण्ड छोड़ते हैं न मनुज का
मोह द्रोह मद मत्सर,
प्रतिद्वन्द्विता सब राष्ट्रों में
है चल रही भयङ्कर,
एक दूसरे पर होता है
उन्हें नहीं विश्वास;
मिटा न जग का त्रास :

रहती है प्रच्छन्न सर्वदा
क्षणप्रभा ज्यों घन में,
प्रतिहिंसा की अग्नि सुलगती
है त्यों ही जन-मन में,
ज्वालान्तर्हित शैल पृष्ठ पर
है मानव का वास;
मिटा न जग का त्रास !

६७

शान्ति क्या द्वेषाग्नि में जलती रहेगी ?

क्या सदा सद्भावना सोती रहेगी ?
विश्व की सद्बुद्धि क्या रोती रहेगी ?
क्या मनुज को दनुजता छलती रहेगी ?
शान्ति क्या द्वेषाग्नि में जलती रहेगी ?

क्या न अत्याचार अवनी में रुकेंगे ?
क्या कभी मस्तक न क्रूरों के झुकेंगे ?
क्या हृदय में कलुषता पलती रहेगी ?
शान्ति क्या द्वेषाग्नि में जलती रहेगी ?

क्या न होंगे दूर मन से मोह मत्सर ?
क्या न होगा मुक्त हिंसा-भाव से नर ?
क्या सदा विष-बेलि ही फलती रहेगी ?
शान्ति क्या द्वेषाग्नि में जलती रहेगी ?

क्या न टूटेगी लड़ी दुर्भावना की ?
क्या न होगी इति समर-सम्भावना की ?
क्या सदा तलवार ही चलती रहेगी ?
शान्ति क्या द्वेषाग्नि में जलती रहेगी ?

क्या मनुष्य विवेक को खोता रहेगा ?
क्या सदा संहार ही होता रहेगा ?
क्या मनुजता हाथ ही मलती रहेगी ?
शान्ति क्या द्वेषाग्नि में जलती रहेगी ?

क्या नहीं जी खोल नर से नर मिलेंगे ?
क्या हृदय-सर के नहीं सरसिज खिलेंगे ?
क्या मनुज की शुभ घड़ी टलती रहेगी ?
शान्ति क्या द्वेषाग्नि में जलती रहेगी ?

६८

सहृदय मानव भी निर्दय है !

जो है जग-जन-जीवन-दाता,
बहु संस्कृति-सभ्यता-विधाता,
नव नव शास्त्रों का निर्माता,
निज विनाशकारिणी शक्ति का
देता रण में वह परिचय है;
सहृदय मानव भी निर्दय है !

जो कर के बहु सुन्दर सुन्दर,
आविष्कार नवीन निरन्तर,
है जग-ज्ञान-कोष देता भर !
वह न्याय-प्रिय मानव भी नित
करता रण में घोर अनय है;
सहृदय मानव भी निर्दय है !

जिसे प्रेम है सचराचर से,
अहित न होता जिसके कर से,
जो डरता है परमेश्वर से,
रण में वह भी किसी पाप से
करता नहीं तनिक भी भय है;
सहृदय मानव भी निर्दय है !

सज्जन भी बनता है दुर्जन,
है मलीन होता निर्मल मन,
जब जग में छिड़ जाता है रण,
जो सविनय पर-दुख-कातर है
वह होता निष्ठुर अविनय है;
सहृदय मानव भी निर्दय है!

६९

संघर्ष क्यों होता रहे ?

जो मोह ईर्षा द्वेष हैं,
जो दम्भ के उन्मेष हैं,
जो भेद-भाव विशेष हैं,
मानव उन्हें धोता रहे;
संघर्ष क्यों होता रहे ?

सब में सदा सद्भाव हो,
सद्बुद्धि का न अभाव हो,
सबका उदार स्वभाव हो,
जग प्रेम का सोता रहे;
संघर्ष क्यों होता रहे ?

यदि न्याय-शक्ति-विकास हो,
अविवेक-तम का नाश हो,
मनुजत्व में विश्वास हो,
तो विश्व क्यों रोता रहे ?
संघर्ष क्यों होता रहे ?

७०

कर रहा है मूढ़ नर
किस देव की अराधना ?

दनुजता से प्यार करके,
घृणा-भाव-प्रचार करके,
सत्य का संहार करके,

प्रेम को देकर तिलाञ्जलि
छोड़ जग-हित-कामना;
कर रहा है मूढ़ नर
किस देव की आराधना ?

सुजनता का कर निरादर,
नीचता का कर समादर,
ढोंग की ही ओढ़ चादर,

छोड़ सच्ची शान्ति की
सुखदायिनी शुभ साधना;
कर रहा है मूढ़ नर
किस देव की आराधना ?

ध्यान ईश्वर का न धर के,
मनुजता का मान हर के,
न्याय का बलिदान कर के,

त्याग कर अपने हृदय की
मृदुल मञ्जुल भावना;
कर रहा है मूढ़ नर
किस देव की आराधना ?

७१

क्यों मनुज करता नहीं तू यह कदापि विचार ?

ललित लतिका-द्रुम-कलित जो है महा छविधाम,
हैं खिले रहते सुमन जिसमें सदैव ललाम,
जो प्रकृति की है रुचिर लीलास्थली अभिराम,
क्या उचित है रक्त-रञ्जित हो वही संसार ?
क्यों मनुज करता नहीं तू यह कदापि विचार ?

है जिसे देता दिवाकर स्वर्ण का परिधान,
शशि कराता है जिसे रसमय सुधा का पान,
जो मनोहर विश्व है शुचि स्वर्ग का उपमान,
क्या उचित है हो वहीं संग्राम बारम्बार ?
क्यों मनुज करता नहीं तू यह कदापि विचार ?

जिस धरा के हैं हृदय में प्रेम पारावार,
जिस धरा के गर्भ में है रत्न का भाण्डार,
जिस धरा के प्राणियों में है दया-सञ्चार,
क्या उचित होना वहाँ है निन्द्य पापाचार ?
क्यों मनुज करता नहीं तू यह कदापि विचार ?

७२

विश्व विश्रुत एक ही परिवार है !

मृदु रुचिर परिधान है उसका हरा,
कोष उसका है अतुल धन से भरा,
विविध सुमनों से सुशोभित है धरा,
क्या न उससे सब जनों को प्यार है ?
विश्व विश्रुत एक ही परिवार है !

सब जनों का एक रूप न रङ्ग है,
है न एक विचार एक न ढङ्ग है,
भाव की भी भिन्न भिन्न तरङ्ग है,
पर सभी में प्रेम का सञ्चार है;
विश्व विश्रुत एक ही परिवार है !

भिन्न यद्यपि मानवों का वंश है,
किन्तु सब में छिपा एक सदंश है,
मनुज ही सब सृष्टि का अवतंश है,
सब जनों का एक स्नेहागार है;
विश्व विश्रुत एक ही परिवार है।

मनुजता भी क्या कदापि विभाज्य है,
भेद-भाव समस्त जग में त्याज्य है,
सब कहीं सर्वेश का साम्राज्य है,
क्षेम का बस प्रेम ही आधार है;
विश्व विश्रुत एक ही परिवार है !

७३

मानव मानव से प्यार करे !

उर में वह आत्म-विकास करे,
जीवन में प्रेम-प्रकाश करे,
मानवता में विश्वास करे,
जो आधि व्याधियाँ हैं जग में
उनका समुचित उपचार करे;
मानव मानव से प्यार करे !

मालिन्य मोह को दूर करे,
निष्ठुरता का मद चूर करे,
कोई भी कार्य न क्रूर करे,
पिट जाय भले ही पर न कभी
बर्बरता का सत्कार करे;
मानव मानव से प्यार करे !

दे छोड़ हृदय की आशा भी,
जीवन-सुख की अभिलाषा भी,
सह ले वह क्षुधा-पिपासा भी,
मर जाय तड़प कर पर न कभी
दानवता का व्यवहार करे;
मानव मानव से प्यार करे !

बन कर अपने मन का स्वामी,
सम्पूर्ण विश्व का शुभकामी,
वह रहे सदा सत्पथगामी,
निज मनोकामना को न कभी
दुर्भावों का आधार करे;
मानव मानव से प्यार करे!

७४

बने मनुज निज उर का ईश्वर !

रहे विचारों में वह संयत,
करे नित्य निज मन को उन्नत,
देखे सबको सदा आत्मवत,
राष्ट्रभावना को न बनावे
मानवता का शत्रु भयङ्कर;
बने मनुज निज उर का ईश्वर !

परोत्कर्ष से जले नहीं वह,
कभी किसी को छले नहीं वह,
घृणित मार्ग पर चले नहीं वह,
करता रहे विश्व का हित वह
सदा स्वार्थ से ऊपर उठ कर;
बने मनुज निज उर का ईश्वर !

भेद-भाव को करे दूर वह,
वैभव-मद में हो न चूर वह,
बने कदापि न कुटिल क्रूर वह,
करे सत्य की वह उपासना
अखिल विश्व को जो है हितकर;
बने मनुज निज उर का ईश्वर !

७५

बने न मनुज नाश का कारण !

मानवता को कभी न छोड़े,
पशुता से सम्बन्ध न जोड़े,
नहीं प्रेम का बन्धन तोड़े,
मानव होकर भी दानव का
करे भयङ्कर रूप न धारण;
बने न मनुज नाश का कारण !

सहृदयता हो उसको प्यारी,
हो न कभी वह अत्याचारी,
रहे न्याय का अटल पुजारी,
करता रहे प्रेम-पूर्वक वह
सदा विश्व का क्लेश-निवारण;
बने न मनुज नाश का कारण !

सभी मानवों से ममता हो,
उसके मन में निर्भ्रमता हो,
पर-दुख हरने की क्षमता हो,
अकरुण हिंस्र जीव बन कर वह
करे न नर का शोणित-पारण;
बने न मनुज नाश का कारण !

७६

करे मनुज निज मन का शासन !

न्याय-पक्ष का करे समर्थन,
रहे दया से सजल-विलोचन,
करे प्रेम-सागर-अवगाहन,
जग-हित को निज ध्येय बना कर
करे सदा वह सत्याराधन;
करे मनुज निज मन का शासन !

दे वह अबलों को अवलम्बन,
करता रहे दैन्य-दुख-भञ्जन,
प्रिय हो उसे न कभी प्रवञ्चन,
अनुशासित हो उसका जीवन
विमल साध्य हो निर्मल साधन;
करे मनुज निज मन का शासन !

करे न विचलित उसे प्रलोभन,
सच्चरित्रता हो उसका धन,
अविकृत रहे सदा उसका मन,
सुलभ उसे हो मानव में ही
परम पिता का दर्शन पावन;
करे मनुज निज मन का शासन !

७७

शान्ति चाहता है जग-जीवन !

जग हो सकता नहीं विभाजित,
राष्ट्र राष्ट्र पर है अवलम्बित,
एक सूत्र में हैं सभी ग्रथित,
रख सकता है सुखी विश्व को
केवल विमल प्रेम का बन्धन;
शान्ति चाहता है जग-जीवन !

भिन्न भिन्न हैं देश मनोहर,
पर सब की उन्नति श्रेयस्कर,
एक दूसरे पर है निर्भर,
यदि न चले सब चक्र नियम से
तो रुक जाता है जग-स्यन्दन;
शान्ति चाहता है जग-जीवन !

जग में शान्ति-साधना के हित,
विमल भावनाओं से पोषित,
है सबका सहयोग अपेक्षित,
सत्य अहिंसा दया क्षमा है
उसे प्राप्त करने के साधन;
शान्ति चाहता है जग-जीवन !

७८

विश्व चाहता है निर्मलता !

है जग का जो ध्येय चिरन्तन,
उसे प्राप्त करने का साधन,
है केवल मन की निश्छलता;
विश्व चाहता है निर्मलता !

वञ्चकता से मिली सफलता,
है जन-जीवन की निष्फलता,
छली स्वयं अपने को छलता;
विश्व चाहता है निर्मलता !

रहें सदा स्वाधीन वचन मन,
होगा तभी सुखी जग-जीवन,
खलती है बस उच्छृंखलता;
विश्व चाहता है निर्मलता !

पशुबल पर जग की निर्भरता,
है नृशंसता की ईश्वरता,
निन्दनीय है यह निर्बलता;
विश्व चाहता है निर्मलता !

हिटलर को क्या मिली बड़ाई ?
क्या मसोलिनी ने गति पाई ?
छलती उनको रही सबलता;
विश्व चाहता है निर्मलता !

७९

सुख-शान्तिमय संसार हो !
पशु-शक्ति का न प्रयोग हो,
सद्भाव का उपयोग हो,
सब में सदा सहयोग हो,
निज चित्त पर निज वित्त पर
सबका सदा अधिकार हो;
सुख-शान्तिमय संसार हो !

व्यक्तित्व का सम्मान हो,
निज देश का अभिमान हो,
पर विश्व-हित का ध्यान हो,
निज स्वार्थ में ही भूल कर
कोई नहीं अनुदार हो;
सुख-शान्तिमय संसार हो !

सबका सदा उत्कर्ष हो,
तो भी न कुछ संघर्ष हो,
आराध्य बस आदर्श हो,
हो वरविवेकविचार मन में
और उर में प्यार हो;
सुख-शान्तिमय संसार हो !